letter2:letter1.qxd 9/26/2010 8:43 PM Page 134

से ही कांग्रेस बिरला हाउस में काम करती रही। आज भी पार्टियां चुनाव में अधिकाधिक खर्च करती हैं। वह पैसा कहां से आता है। सारी सरकारी नीतियां मुट्ठीभर पूंजीपतियों के सहारे पर चल रही हैं। ऐसी स्थिति में भारत का भविष्य कैसे सुधरेगा? जब तक हर एक नागरिक स्वावलंबन का ध्येय अपने सम्मुख रखकर काम नहीं करेगा तो भारत स्वतंत्र है यह कहना कठिन है। देश में मानव जीवन के लिए आवश्यक सभी प्राकृतिक संसाधन ग्रामीण क्षेत्र में ही उपलब्ध होते है। उन्हीं के सहारे देश तरक्की करता है। हमारे देश में विपुल प्राकृतिक संसाधन हैं वह सारे संसार के लिए काम में लाये जा रहे हैं। दिल्ली में पेयजल की समस्या हरियाणा और उत्तर प्रदेश से पानी के बिना हल नहीं हो सकती। बीकानेर से टैंकरों से दिल्ली के नागरिकों के लिए दूध लाया जाता है। गांव के बच्चे कुपोषण से शिकार हो रहे हैं। जिले-जिले में सरकारी दुग्ध भण्डार शहरों की पूर्ति के लिए गांव-गांव से दूध इकट्ठा करके शहरों की पूर्ति की जा रही है। इस प्रकार गांव-गांव में बच्चे कुपोषण का शिकार बन रहे हैं। हमारा किसान स्वावलंबी था। आज भी उसे मशीनों के लिए पूंजीपतियों का गुलाम बनाया जा रहा है। यहां तक टिशु कल्चर के अधिक उत्पादन के लिए किसानों को हमेशा के लिए पूंजीपतियों का गुलाम बनाया जा रहा है। क्या यह भारत को स्वतंत्रता की देन कहा जायेगा?

विरोधी दल उचित-अनुचित ढंग से सत्तारुढ़ दल को अपदस्थ कर शासन पर अपना अधिकार प्रस्थापित करने के लिए रात-दिन प्रयत्नशील होते रहे। उनके घोषणा-पत्र हाथी के दिखाने के दांत के समान सिद्ध हुए हैं। इस प्रकार, दलीय लोकतंत्र विभिन्न दलों का सत्ता-प्राप्ति का अखाड़ा मात्र बना है। उसमें न लोकतंत्र का लवलेश है न जन सामान्य का कल्याण करने की भावना ही है। स्वतंत्र भारत का यही नजारा है।

श्रद्धेय जयप्रकाश जी ने उपर्युक्त दुर्दशा का बहुत पहले ही अनुमान लगाया था। उनकी ''समग्र क्रांति'' का लक्ष्य था, दलीय लोकतंत्र के स्थान पर ''पार्टीलेस डेमोक्रेसी'' अर्थात् ''कौटुम्बिक शासन व्यवस्था'' प्रस्थापित करना। किन्तु इंदिरा जी की तानाशाही मिटाकर ''समग्र-क्रांति'' की इतिश्री मानी गई। जयप्रकाश जी स्वयं गंभीर बीमारी के कारण अपने लक्ष्य-प्राप्ति में सर्वथा असमर्थ हुए थे। अन्य कोई नेता ''समग्र-क्रांति'' की मूलभावना और उसकी आवश्यकता समझ नहीं सका। सभी राजनेता आम लोगों के उत्थान की परवाह किए बिना सत्ता-प्राप्ति की होड़ में लगे हुए हैं।

मेरी आयु का एक-तिहाई भाग अंग्रेजी हुकूमत में बीता। शेष समय स्वतंत्र भारत में बीत रहा है। मेरे इस लम्बे जीवन में मुझे तीन महापुरूषों के सान्निध्य में आने का सौभाग्य मिला। उनमें से प्रथम महापुरूष थे - परमपूज्य डॉ. हेडगेवार, द्वितीय महापुरूष थे - पं. दीनदयाल उपाध्याय तथा तृतीय महापुरूष थे - श्रद्धेय जयप्रकाश नारायण।

इन महापुरूषों ने अपने जीवन में क्षण मात्र के लिए भी व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा को प्रश्रय नहीं दिया था। वैवाहिक सुख की (जयप्रकाश जी ने विवाहित होते हुए भी) अभिलाषा की अपने जीवन पर छाया तक पड़ने नहीं दी। अपनी आयु में उन्होंने उपदेशात्मक भूमिका नहीं अपनाई। आयु का एक-एक पल कर्तव्यपूर्ति के साथ राष्ट्र-कार्य करते-करते ही बिताया। इन महापुरूषों की व्यापक जीवन-दृष्टि को अबाधित गति से आगे बढ़ाया गया होता तो संघ-शाखाएं रूढ़ि बनकर अपने समाज को जातियों, भाषाओं एवं मजहबों में खण्ड-खण्ड होते हुए न देखती, अपितु गतिशील प्रक्रिया बन अपने विविधतापूर्ण समाज में एकात्मता को दृढ़-मूल करती। संपूर्ण समाज को अपना परिवार मानने की पू. डॉक्टर जी की अवधारणा पर एकाग्र बनी रहती।

जयप्रकाशजी की समग्र क्रांति का लक्ष्य था, दलीय लोकतंत्र के स्थान पर पार्टीलेस डेमोक्रेसी अर्थात् कौटुम्बिक शासन व्यवस्था प्रस्थापित करना।

नानाजी की पाती युवाओं के नाम

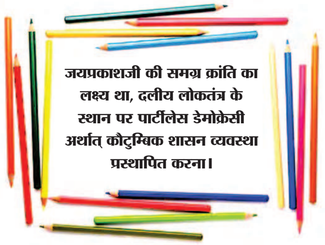

राजनीतिक जीवन में जो पतन हुआ है वह नहीं होता।

किन्तु डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी के महान व्यक्तित्व का लाभ उठाकर प.पू. गुरु जी से दलगत राजनीति में प्रवेश पाने की अनुमति प्राप्त की गई। समाजव्यापी पारिवारिक जीवन-दृष्टि भुलाकर अपने द्वारा निर्मित संस्थाओं का संकुचित परिवार बनाकर राजसत्ता की अभिलाषा के चक्कर में फंसे और आपसी कलह के शिकार बने।

दीनदयाल शोध संस्थान ने तीनों महापुरूषों के जीवन से प्रेरणा पाकर द्वंद्वात्मक राजनीति से स्वयं को पूर्णतः अलिप्त कर लिया। ग्रामोदय को आधार बनाकर इन महापुरूषों के सपनों को साकार करने के कार्य में स्वयं को समर्पित किया।

इस महान कार्य को सम्पन्न करने के लिए हम सभी साधारण कार्यकर्ता जुट गए। विजय-पराजय के थपेड़े खाते-खाते कई साल बीत गए। गरीब और उपेक्षित लोगों की आर्थिक-स्थिति में सुधार अवश्य हुआ। किन्तु चारों ओर के दूषित माहौल में लोगों के जीवन में सामाजिक जीवन-दृष्टि विकसित नहीं कर पाए। इससे हम कार्यकर्तागण चिंताग्रस्त थे।

ऐसी अवस्था में एक दिन अचानक अनुसूइया आश्रम चित्रकूट के स्वामी आदरणीय भगवानानंद जी महाराज मिलने आए। पूर्व-परिचय न होते हुए उन्होंने हम लोगों को सुझाया कि ''आप लोग बहुत अच्छा काम कर रहे हो। आपको वनवासी प्रभु राम की कर्मभूमि चित्रकूट क्षेत्र में भी ऐसा ही काम करना चाहिए। वह क्षेत्र पूर्णतः उपेक्षित पड़ा है। आप चित्रकूट क्षेत्र में काम करोगे तो आपका कार्य अधिक सार्थक सिद्ध होगा।''

चित्रकूट क्षेत्र में काम करने के सुझाव ने हम कार्यकर्ताओं को प्रभावित किया। राजसत्ता से सहज में ही निर्लिप्त होने वाले प्रभु राम ने अविलंब वनवास-गमन किया। उन्होंने सामाजिक शक्ति को राजसत्ता से अधिक समर्थ, स्थाई और विजयी बनाकर राष्ट्र-जीवन के मर्म को प्रकट किया। उन्हीं के पदचिन्हों पर चलकर भरत ने राजसत्ता ठुकरा कर चित्रकूट पहुंचने के लिए प्राथमिकता दी। अयोध्या का राजकाज संभालने के लिए राम से प्रार्थना की। राम ने भरत को समझाया कि ''इस परिस्थति में चौदह वर्ष तुम्हें ही अयोध्या का राजकाज संभालना उपयुक्त है।'' भरत ने दुःखी मन से राम की आज्ञा मानी। सिंहासन पर राम की पादुकाएं प्रतिष्ठित कर स्वयं एक सेवक के रूप में राजकाज संभालना स्वीकार किया।

इस समय देश में राजसत्ता पाने का घिनौना खेल खेला जा रहा है। ऐसे समय नई पीढ़ी में कर्तव्यबोध एवं सामाजिक जीवन-दृष्टि प्रेरित करने के लिए चित्रकूट से अधिक उपयुक्त स्थान अन्य नहीं हो सकता। इसकी हम सभी को अनुभूति हुई। अतः दीनदयाल शोध संस्थान ने चित्रकूट क्षेत्र में भी अपना कार्य प्रारंभ किया।

शुभाकांक्षी

नाना देशमुख

(नाना देशमुख)

राजसत्ता से सहज में ही निर्लिप्त होने वाले प्रभु राम ने सामाजिक शक्ति को राजसत्ता से अधिक समर्थ, स्थायी और विजयी बनाकर राष्ट्र-जीवन के मर्म को प्रकट किया।